केवल विरोध के लिए विरोध की मानसिकता

सर्वोच्च न्यायालय ने कुछ बुद्धिजीवियों द्वारा दायर की गई जनहित याचिका के आधार पर फ़िलहाल नए संसद-भवन के निर्माण पर रोक लगा दी है। उन कथित बुद्धिजीवियों का कहना है कि नए निर्माण से पर्यावरण पर विपरीत असर पड़ेगा। उनकी देखा-देखी सोशल मीडिया पर भी ऐसी चर्चाएँ देखने को मिलीं कि कोविड-काल जैसी विषम परिस्थितियों में ऐसे निर्माण की क्या आवश्यकता थी? उल्लेखनीय है कि नए संसद-भवन के निर्माण का निर्णय आनन-फ़ानन में नहीं लिया गया है। इसकी आवश्यकता बहुत पहले से महसूस की जा रही थी, क्योंकि मौजूदा संसद-भवन में जगह की कमी पड़ रही थी। दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन के लिए यह बहुत छोटा पड़ता था। मौजूदा भवन लगभग 100 वर्ष पुराना है और 2026 में निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन के पश्चात संसद-सदस्यों की संख्या भी बढ़ने वाली है। नए संसद-भवन का निर्माण वर्तमान एवं आगामी 150 वर्षों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया जा रहा है और आज़ादी की 75 वीं सालगिरह यानी 2022 तक प्रधानमंत्री मोदी इसे देश के हाथों सौंपने के लिए दृढ़ संकल्पित हैं।

जहाँ तक प्रकृति और पर्यावरण के प्रति जागरूकता एवं सरोकारों की बात है तो निःसंदेह ऐसी सरोकारधर्मिता समय की माँग है। परंतु हमें यह भी देखना पड़ेगा कि इन सरोकारों के पीछे नीति और नीयत में कितनी स्पष्टता और ईमानदारी है? कितना लोकहित और कितना अन्यान्य एवं परोक्ष हित साधने की कलाबाज़ी है? प्रायः यह देखने में आता है कि कथित बुद्धिजीवियों-एक्टिविस्टों का एक धड़ा या अभिजन गिरोह देश के विकास संबंधी हर परियोजना पर आपत्तियाँ दर्ज कराता है, उसकी निर्बाध संपन्नता में अड़चनें पैदा करता है। वह प्रायः भारत और भरतीयता के विरोध में खड़ा नज़र आता है। आँकड़े और अनुभव तो यह बताते हैं कि जन-सरोकारों के नाम पर तमाम कथित बुद्धिजीवियों एवं एक्टिविस्टों द्वारा देश के विकास संबंधी हर आवश्यक एवं महत्त्वाकांक्षी परियोजनाओं को अधर में लटकाया गया है। धरने-प्रदर्शन-आंदोलन जैसे अनावश्यक हस्तक्षेप, नियमित गतिरोध पैदा कर महीनों में पूरी होने वाली परियोजनाओं को वर्षों तक खींचा गया है। लाखों का बजट करोड़ों और करोड़ों का अरबों तक पहुँचाया गया है। बल्कि कुछ मामलों में तो शत्रु एवं प्रतिस्पर्द्धी देशों के हितों को पोषित करने और विदेशी कंपनियों के लिए लॉबीइंग तक करने की सच्चाई सामने आ चुकी है। प्रकृति और पर्यावरण की चिंता के साथ-साथ हमें यह भी ध्यान रखना पड़ेगा कि विकास की कुछ-न-कुछ क़ीमत तो चुकानी ही पड़ती है। सड़कों-बाँधों-पुलों- डैमों-नहरों-भवनों आदि आधारभूत संसाधनों के निर्माण के बिना देश की तस्वीर और तक़दीर कैसे बदली जा सकती है? उन कथित बुद्धिजीवियों या अभिजन गिरोह को यह याद रखना होगा कि वैश्विक चुनौती एवं

गलाकाट प्रतिस्पर्द्धा वाले आज के दौर में न तो राष्ट्रीय हितों को ताक पर रखा जा सकता है, न सुरक्षा के पुख़्ता एवं कारगर तरीकों व इंतज़ामों से समझौता किया जा सकता है और न ही आर्थिक सुधारों की गति धीमी कर देश के विकास की गाड़ी को पटरी से उतारा जा सकता है। कहना अनुचित नहीं होगा कि बाज़ारवादी-उपभोक्तावादी संस्कृति को पानी पी-पीकर कोसने वाले तमाम एक्टिविस्ट या अभिजन गिरोह स्वयं आकंठ भोग में डूबे पाए जाते हैं। क्या यह सत्य नहीं कि समाज के अंतिम व्यक्ति की बात करने वाले ; वंचितों-शोषितों-मजदूरों के हक और पर्यावरण-हितों की दुहाई देने वाले इन कथित बुद्धिजीवियों-एक्टिविस्टों में से कई- अक़्सर हवाई यात्राएँ करते हैं, महँगे-महँगे गैजेट्स इस्तेमाल करते हैं, वातानुकूलित-गगनचुंबी अट्टालिकाओं में सभाएँ-सेमिनार करते हैं और सुविधासंपन्न-आलीशान ज़िंदगी जीते हैं ? यह दोहरापन इनकी साख़ और नीयत पर सवाल खड़े करता है।

जो लोग इस पर आने वाले व्यय और वर्तमान की विषम परिस्थितियों का रोना रो रहे हैं ? उन्हें यह याद रखना होगा कि परिश्रमी-पुरुषार्थी लोग समय और अवसर की बाट नहीं जोहते, अपितु विषम-प्रतिकूल परिस्थितियों में भी राह बनाते हैं। क्या वे यह कहना चाहते हैं कि कोविड-काल में सरकारों को हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहकर अनुकूल और उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करनी चाहिए ? क्या इस अवधि में सरकार को अतिरिक्त क्रियाशील एवं उद्यमरत नहीं रहना चाहिए ? क्या सरकार को नीति व निर्णय की पंगुता और शिथिलता का परिचय देना चाहिए ? अचरज यह कि यही लोग कोविड-काल में हो रहे हल्ले-हंगामे-हुड़दंगों पर बिलकुल मौन साध जाते हैं। तब इन्हें विषम परिस्थितियों की सुध नहीं रहती। यह तो शुभ एवं सुखद संकेत है कि इस अवधि में भी सरकार सभी मोर्चों पर मुस्तैद और सक्रिय नज़र आती है। और जहाँ तक धन के अपव्यय की बात है तो अधिक दिन नहीं हुए जब भारत में व्याप्त अभाव एवं ग़रीबी का हवाला दे-देकर कुछ लोग श्रीराम मंदिर के निर्माण के स्थान पर विद्यालय-विश्वविद्यालय-चिकित्सालय आदि खुलवाने की सलाहें दिया करते थे और ऐसी सलाहों पर मार-तमाम लोग तालियाँ भी पीटा करते थे ! क्या यही बात वे अन्य मतावलंबियों के तीर्थस्थलों और देवालयों के संदर्भ में डंके की चोट पर कह सकते थे ?

और फिर हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि इस देश में ऐसे एक्टिविस्टों एवं उनके द्वारा संचालित एनजीओज की भी कमी नहीं रही है जो भारत की ग़रीबी को दुनिया में बेच-बेचकर फंड इकट्ठा करती रही हैं। भारत की तरक्क़ी की बदलती तस्वीरों को देखकर उनके पेट में मरोड़ें उठना स्वाभाविक है। औपनिवेशिक मानसिकता को तिलांजलि देकर विकसित एवं पश्चिमी देशों की आँखों में आँखें डालकर बात करने वाला स्वाभिमानी भारत आज बहुतेरों की दृष्टि में खटकने लगा है। वे नहीं चाहते कि भारत दुनिया से बराबरी की भाषा में बात करे। वे नहीं चाहते कि पूरी दुनिया में भारत और भारत की प्राचीन एवं महान लोकतांत्रिक परंपराओं की दुंदभि बजे। और यही लोग हैं जो कल को छाती पीट-पीटकर यह कहने से भी गुरेज़ नहीं करेंगें कि आज़ाद भारत ने हमें दिया ही किया है, सब तो गोरे अंग्रेजों का किया-धरा है।

केवल विरोध के लिए विरोध करने की मनोवृत्ति से ऊपर उठकर यदि विचार करें तो सच यही है कि निर्माण चाहे भौतिक ही क्यों न हो, व्यक्ति-समाज-राष्ट्र की धमनियों में उत्साह का संचार करता है। रुकी-ठहरी हुई ज़िंदगी को गति देता है। उम्मीदों और सामूहिक हौसलों को परवान चढ़ाता है। नए निर्माण की प्रसन्नता उससे पूछिए जो जीवन भर किराए के घर में बिताने के बाद अपने घर में जाने-रहने

का सपना सच कर दिखाता है। नि:संदेह नया संसद-भवन राष्ट्र की आशाओं-आकांक्षाओं का जीवंत-जाग्रत स्वरूप होगा। यह राष्ट्र के मान-सम्मान-स्वाभिमान का मूर्त्तिमान प्रतीक होगा। वह भारत की महान लोकतांत्रिक परंपराओं, साझी-समृद्ध विरासत, विविधवर्णी कला व विविधता में एकता की अनुभूति कराने वाली संस्कृति का प्रतिबिंब होगा।

प्रणय कुमार
9588225950